

मुंशी प्रसाद व अन्य

बनाम

बिहार राज्य

10 अक्टूबर, 2001

[उमेश सी. बनर्जी और के.जी. बालकृष्णन, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील-हत्या का अपराध-तथ्य-संदर्भ का समवर्ती निष्कर्ष-जब अपेक्षित हो- अभिनिर्धारित किया जाता है, जब निष्कर्ष कुछ दोषों से ग्रस्त हो और मौलिक नियमों का उल्लंघन करता हो या निश्चित प्रक्रियात्मक अन्याय हो जो अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक जाता हो-दंड संहिता, 1860-धारा 302।

धारा 154- प्राथमिकी -दायर करने में देरी-प्रभाव- यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि देरी के लिए उचित स्पष्टीकरण है तो देरी घातक नहीं है।

धारा 157- दंडाधिकारी को प्राथमिकी की प्रतिवेदन भेजने में देरी-प्रभाव-यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि देरी उचित है और इसके लिए स्वीकार्य स्पष्टीकरण है तो यह मुकदमे को निष्प्रभावी नहीं करेगा।

आपराधिक विचारण :

तकनीकी दलील-अभिलेख पर विश्वसनीय और विश्वसनीय साक्ष्य-न्यायालय अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता के बारे में आश्वस्त-यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि तकनीकीता अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक नहीं पहुँचती है तो तकनीकीता न्याय की प्रक्रिया पर भारी नहीं पड़नी चाहिए।

साक्ष्य का मूल्यांकन-सिद्धांत-हितबद्ध साक्षी -साक्ष्य की विश्वसनीयता-अभिनिर्धारित, साक्ष्य की जाँच में अधिक सावधानी बरतना न्यायालय का कर्तव्य है ऐसे साक्षियों के लिए-साक्ष्य विश्वसनीय पाया गया, अस्वीकृति न्यायोचित नहीं- साक्ष्य में मामूली

भिन्नताएँ और विसंगतियाँ-प्रभाव-अभिनिर्धारित, यदि अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित नहीं कर रहे हैं तो न्यायालय को ऐसे साक्ष्य को अस्वीकार नहीं करना चाहिए- साक्षियों के साथ व्यवहार-अभिनिर्धारित, बचाव पक्ष के साक्षि अभियोजन पक्ष के समान सम्मान और व्यवहार के हकदार हैं।

शव-परीक्षण प्रतिवेदन और मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन-के बीच अंतर-अभिनिर्धारित किया गया, उनके बीच विसंगति न तो घातक है और न ही कोई संदिग्ध परिस्थिति है- दोनों प्रतिवेदनों को मूल या मूल साक्ष्य नहीं कहा जा सकता।

शब्द और वाक्यांश-'अन्यत्र' उपस्थिति)-आम बोलचाल में इसका अर्थ।

अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया कि सूचक (अभियोजन साक्षी 1) और उसका भाई, मृतक, साइकिल से अपने गाँव लौट रहे थे, जब उन्हें अपीलकर्ताओं -आरोपियों ने घेर लिया, जो हथियारों से लैस थे और झाड़ियों और गन्ने के खेतों में छिपे हुए थे। हालांकि, सूचक ने खुद को छुड़ाया और शोर मचाते हुए घटनास्थल से भाग गया और कुछ दूरी से अपीलकर्ताओं द्वारा अपने भाई पर हमला और हत्या होते देखी। अन्य साक्षी (अभियोजन साक्षी 1- अभियोजन साक्षी 4) भी घटनास्थल पर पहुँचे और उन्होंने अपीलकर्ताओं को घटनास्थल से भागते हुए देखा। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को हत्या करने का दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई, जिसे उच्च न्यायालय ने अपील में बरकरार रखा। इसलिए अभियुक्तों द्वारा वर्तमान अपील दायर की गई।

अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया कि बचाव पक्ष के साक्षियों द्वारा प्रस्तुत विशिष्ट साक्ष्य उनके पक्ष में एक बहाना प्रस्तुत करते हैं; मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन और शव-परीक्षण प्रतिवेदन में कुछ अंतर है जिससे संदिग्ध परिस्थितियाँ बनती हैं जो उनके पक्ष में संदेह का लाभ पाने योग्य हैं; मूल सूचना पत्र होने के कारण सनहा प्रस्तुत न करने के कारण अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल अनुमान लगाया जाना चाहिए था; प्राथमिकी दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक थी; यह अज्ञात अभियुक्त द्वारा की गई हत्या का मामला था जिसका किसी व्यक्ति ने साक्षी नहीं बनाया था, अभियोजन पक्ष का मामला मनगढ़ंत है और उन्हें सूचक के परिवार और अपीलकर्ताओं के बीच दुश्मनी और शत्रुतापूर्ण संबंधों के कारण

झूठा फंसाया गया है; अभियोजन साक्षी 1 से 5 हितबद्ध साक्षी हैं क्योंकि वे एक ही गाँव के हैं और एक-दूसरे के रिश्तेदार हैं; किसी भी स्वतंत्र साक्षी से पूछताछ नहीं की गई है; और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 157 के तहत दंडाधिकारी को प्राथमिकी भेजने में देरी से विचारण की प्रक्रिया प्रभावित हुई है।

अपीलों को खारिज करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: अब यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि हत्या के अपराध में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में, सर्वोच्च न्यायालय तथ्यों का एक साथ निष्कर्ष होने की स्थिति में हस्तक्षेप करने में धीमा होगा, जब तक कि 'निश्चित रूप से', प्राप्त निष्कर्ष किसी दोष से ग्रस्त न हो और इस प्रकार मौलिक नियमों का उल्लंघन न करता हो या अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक पहुँचने वाला कोई निश्चित प्रक्रियात्मक अन्याय न हो। [29-एच; 30-ए]

अर्जुन मारिक और अन्य बनाम बिहार राज्य, [1994] पूरक 2 एससीसी 372, पर अवलंबित।

2.1. शब्द 'अलीबाई', एक लैटिन अभिव्यक्ति है जिसका सामान्य अर्थ 'अन्यत्र' है। यह एक बचाव है जो किसी अभियुक्त द्वारा अपराध में भाग लेने की भौतिक असंभवता पर आधारित है, जिसमें प्रासंगिक समय पर अपराध स्थल के अलावा किसी अन्य स्थान पर अभियुक्त को रखना शामिल है, संक्षेप में कहें तो अपराध के घटित होने के समय अभियुक्त की उपस्थिति कहीं और थी। इस प्रकार, दूरी, अन्यत्र उपस्थिति की दलील की स्वीकार्यता के मामले में एक महत्वपूर्ण कारक होगी। [30-सी; डी; एफ]

2.2. वर्तमान मामले में, घटना स्थल पंचायत स्थल से 400-500 गज की दूरी पर था। 400-500 गज की दूरी को 'अन्यत्र उपस्थिति' नहीं कहा जा सकता - घटना स्थल पर और पंचायत बैठक में उपस्थित होना असंभव नहीं है, क्योंकि दूरी ऊपर बताई गई है। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य स्वयं ही अलीबी (घटनास्थल पर अनुपस्थिति) के दावे को खारिज करते हैं। [31-डी; ई]

दूध नाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर (1981) एससी 911, पर अवलंबित किया गया।

3. मृतक के शरीर पर पाए गए घावों को ध्यान में रखते हुए, मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन और शव-परीक्षण प्रतिवेदन में कुछ अंतर है। किसी विशेष चोट का उल्लेख न होना या उसमें किसी अतिरिक्त चोट का संकेत न होना, अभियोजन पक्ष के मामले को अमान्य नहीं कर सकता। मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन तैयार करना आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अनुसार जांच का एक हिस्सा है और न तो मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन और न ही शव-परीक्षण को मूल साक्ष्य या ठोस साक्ष्य माना जा सकता है और न ही उसमें पाई गई विसंगति को न तो घातक और न ही संदिग्ध परिस्थिति माना जा सकता है, जिससे आरोपी को लाभ मिले और परिणामस्वरूप अभियोजन पक्ष का मामला खारिज हो जाए। न्यायालय में चिकित्सक का बयान ही ठोस साक्ष्य की विश्वसनीयता रखता है, न कि शव-परीक्षण प्रतिवेदन । [31-एच ; 32-ए ; 34-इ ; एफ]

बलाका सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर (1975) एससी 1962, उद्धृत।

4. किसी महत्वपूर्ण साक्ष्य को प्रस्तुत न करने से कुछ परिस्थितियों में प्रतिकूल निष्कर्ष निकल सकता है, लेकिन वर्तमान संदर्भ में नहीं। तकनीकी पहलू को न्याय के मार्ग पर हावी नहीं होने देना चाहिए, खासकर तब जब अभिलेख पर मौजूद विश्वसनीय साक्ष्य मौजूद हों, और विशेष रूप से तब जब साक्ष्य प्रस्तुत न करने से अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ पर कोई असर न पड़ता हो। [35-ए]

5. यह सर्वविदित है कि केवल प्राथमिकी दर्ज करने में देरी को आपराधिक अभियोजन के लिए घातक नहीं कहा जा सकता। प्रथम सूचना प्रतिवेदन को आरंभिक बिंदु माना जा सकता है और इस प्रकार यह आपराधिक अभियोजन की शुरुआत करती है। सख्ती से कहें तो अगर प्राथमिकी में देरी हुई है और इसके लिए कोई उचित स्पष्टीकरण दिया गया है, तो इसका कोई महत्व नहीं है, हालाँकि तथ्यात्मक रूप से ऐसा है भी नहीं। (35-बी; सी; 36-बी]

एग्रन जोसेफ उर्फ करेंट कुंजुकवु और अन्य बनाम केरल राज्य, ए.आई.आर (1973)
SC 1 पर अवलंबन किया गया।

6.1. न्यायालय का सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह संबंधित साक्षियों के साक्ष्य की जांच में अधिक सावधानी बरते। और यदि ऐसी जांच में पाया जाता है कि अभिलेख में मौजूद साक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय है, तो हितबद्ध साक्षी होने के आधार पर उसे अस्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। संपूर्ण साक्ष्य ही मायने रखता है, और यदि इससे साक्ष्य की स्वीकार्यता का विश्वास उत्पन्न होता है, तो 'हितबद्ध साक्षी' होने के आधार पर उसे अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। [40-एफ ; जी ; एच]

6.2. अभिलेख दर्शाते हैं कि अभियोजन साक्षी 1 और 2 स्वतंत्र साक्षी हैं। इन दोनों साक्षियों का प्रतिपरीक्षण, यद्यपि व्यापक रूप से किया गया, अपीलकर्ताओं के लिए कोई लाभ उत्पन्न नहीं कर सका और साक्ष्य पूर्णतः अप्रभावित बना रहा तथा इस प्रकार न्यायालय द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य है। अभियोजन साक्षी 3, 4 और 5 के साक्ष्य दो स्वतंत्र साक्षियों द्वारा पुष्ट हैं। अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद हैं, जिससे न्यायालय के मन में विश्वास उत्पन्न होता है। [38-बी;डी;ई]

7. साक्ष्य की गुणवत्ता आवश्यक है, मात्रा नहीं। यदि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य अन्यथा संतोषजनक प्रकृति के हैं और विश्वसनीय माने जा सकते हैं, तो साक्षियों की संख्या में वृद्धि को मामले के लिए आवश्यक नहीं कहा जा सकता [40-डी; ई]

8. किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित किए बिना तुच्छ मामलों पर मामूली विसंगतियों के आधार पर न्यायालय को साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं करना चाहिए। यदि साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य का सामान्य स्वरूप और विचारण न्यायालय साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर उसकी विश्वसनीयता के बारे में राय बनाती है, तो सामान्य परिस्थितियों में अपीलीय न्यायालय उचित कारणों के बिना इसकी दोबारा समीक्षा करने का औचित्य नहीं होगा। [38-एफ]

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एम.के. एंथोनी, [1985] 1 एससीसी 525 और लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, (1999] 9 एससीसी 525 पर अवलंबन किया गया।

9. बचाव पक्ष के साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को केवल इस तथ्य के कारण दूषित नहीं कहा जा सकता कि उनकी जांच बचाव पक्ष द्वारा की गई है। बचाव पक्ष के साक्षी अभियोजन पक्ष के साक्षियों के समान सम्मान और व्यवहार के हकदार हैं। विश्वसनीयता और भरोसेमंदता का मुद्दा बचाव पक्ष के साक्षियों पर भी अभियोजन पक्ष के साक्षियों के समान ही लागू होना चाहिए। बचाव पक्ष के साक्षी की चूक को अभियोजन पक्ष के साक्षियों की चूक से अलग नहीं माना जा सकता।[31-एफ;जी]

10. हालांकि यह सच है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 157 के अनुसार पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह प्राप्त सूचना की प्रतिवेदन तुरंत दंडाधिकारी को भेजे, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अभिलेख पर मौजूद किसी भी सकारात्मक और विश्वसनीय साक्ष्य को खारिज कर दिया जाए। तकनीकी पहलू न्याय की प्रक्रिया पर भारी नहीं पड़ना चाहिए - यदि न्यायालय अन्यथा आश्वस्त है और अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता के संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुँच गया है, तो केवल देरी, जिसे अन्यथा उचित माना जा सकता है, अभियोजन पक्ष के मामले को अपने आप में ध्वस्त नहीं कर देगी। वैधानिक दायित्व अत्यंत तत्परता की मांग करता है और यदि कोई स्पष्टीकरण उपलब्ध हो, जो अन्यथा स्वीकार्य भी हो, तो अभियोजन पक्ष के प्रशिक्षित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्राथमिकी ने जांच शुरू कर दी और यदि कहीं कोई देरी होती है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, स्वीकार्य स्पष्टीकरण के साथ, तो देरी के कारण वाद को अमान्य नहीं कहा जा सकता है। [42-जी; एच; 43-ए; 44-एफ; जी]

शिव राम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1998] 1 एससीसी 149 और कर्नाटक राज्य बनाम मोइन पटेल एवं अन्य, एआईआर (1996) एससी 3041 पर अवलंबन किया गया।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 491-492 वर्ष 2000।

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 28.7.90 के निर्णय एवं आदेश से आपराधिक अपील संख्या 590 एवं 686 वर्ष 1984 में।

आर. वेंकटरामानी एवं सत्य मित्र गर्ग अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित हुए।

उत्तरदाता की ओर से बी.बी. सिंह के लिए साकेत सिंह उपस्थित हुए।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया।

बनर्जी, न्यायमूर्ति: यह अब कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि हत्या के अपराध में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में, तथ्यों की समवर्ती निष्कर्ष की स्थिति में, सर्वोच्च न्यायालय हस्तक्षेप करने में अपेक्षाकृत धीमी गति से कार्य करेगा, जब तक कि बेशक, प्राप्त निष्कर्ष किसी त्रुटि से ग्रस्त न हो और इस प्रकार मौलिक नियमों का उल्लंघन करता हो या अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक जाने वाला एक निश्चित प्रक्रियात्मक अन्याय हो। (इस संदर्भ में, इस न्यायालय का अर्जुन मारिक और अन्य बनाम बिहार राज्य, [1994] पूरक 2 एसएससी पृष्ठ 372 का निर्णय देखें। इस परिप्रेक्ष्य में पटना उच्च न्यायालय द्वारा 28 जुलाई, 1999 को दिए गए सामान्य निर्णय के विरुद्ध वर्तमान अपील पर विचार किया जाना चाहिए, आपराधिक अपील संख्या 590/1984 और 686/1984 में अपील के समर्थन में दिए गए तर्कों पर विचार करने से पहले, इस मामले में एक सावधानी बरतनी होगी, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर कहा गया है, कि हत्या के विचारण में साक्ष्यों की जांच सामान्य से अधिक सावधानी से की जानी चाहिए ताकि निष्पक्ष न्यायिक संबिक्षा प्रभावित न हो।)

अपील में दिए गए फैसले की तीन प्रमुख बिंदुओं पर आलोचना की गई है: इन तीन बिंदुओं में से पहला बिंदु अलीबाई (अन्यत्र उपस्थिति) की दलील से संबंधित है। 'अलीबाई' शब्द, एक लैटिन अभिव्यक्ति है, जिसका सामान्य अर्थ 'कहीं और' होता है: यह एक ऐसा बचाव है जो किसी अपराध में आरोपी की शारीरिक असंभवता पर आधारित है, जिसके आधार पर आरोपी को अपराध स्थल के अलावा किसी अन्य स्थान पर प्रासंगिक समय पर उपस्थित नहीं किया जा सकता है, संक्षेप में, जब अपराध किया गया था तब आरोपी की उपस्थिति कहीं और थी। इस न्यायालय ने *दुध नाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, एआइआर (1981) एसएससी 911 में एलिबी की दलील के संबंध में निम्नलिखित कहा है:

"... 'अन्यत्र उपस्थिति' की दलील अपराध स्थल पर आरोपी की उपस्थिति की शारीरिक असंभवता को दर्शाती है, क्योंकि वह किसी अन्य स्थान पर मौजूद था।

इसलिए यह दलील तभी सफल हो सकती है जब यह साबित हो जाए कि आरोपी संबंधित समय पर इतनी दूर था कि वह उस स्थान पर मौजूद नहीं हो सकता था जहाँ अपराध हुआ था।"

-इस प्रकार, दूरी, अलीबाई (घटनास्थल पर अनुपस्थिति का प्रमाण) की स्वीकार्यता के मामले में एक महत्वपूर्ण कारक होगी। दिलचस्प बात यह है कि अपील के समर्थन में उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वेंकटरामानी द्वारा उठाया गया यह तर्क, बचाव पक्ष के साक्षियों द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत विशिष्ट साक्ष्यों पर आधारित है। साक्ष्य के अन्यथा सत्य होने की धारणा पर, श्री वेंकटरामानी के तर्क को स्वीकार करने में कुछ कठिनाई प्रतीत होती है। राज नारायण प्रसाद (बचाव पक्ष के साक्षी सं. 2) द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य निम्नलिखित था।

2. दिनांक 27.6.80 को दोपहर 12 बजे योगेंद्र प्रसाद के बगीचे में पंचायत हुई। मैं पंचायत में गया और मुखिया को बताया कि मुझे पता चला है कि नक्का टोला में हत्या हुई है। उस समय मुझे यह नहीं पता था कि हत्या किसने की है।

3. उस समय पंचायत में बोस साहब, मंगलू दसाई साहनी, दसाई साहनी, नागा मेहता, हीरा साहनी, मुल्तान मियां और रघुनाथ मेहता आदि उपस्थित थे।

4. जब मैंने उन्हें सूचना दी तो वे चिंतित हो गए और सभी मुखिया जी के साथ चले गए। मैं भी उनके साथ गया।

5. सड़क के पश्चिमी किनारे पर, पूर्व की ओर 25-30 गज की दूरी पर, गन्ने के खेत में एक शव पड़ा था। मैंने वहाँ लोगों से भी पूछा, लेकिन मुझे पता नहीं चला कि हत्या किसने की थी। शव पंचायत स्थल से चार-पांच सौ गज की दूरी पर था। हम शव के पास ही रुके रहे, शाम 5- 5:30 बजे तक। उसके बाद जमादार साहब वहाँ आए, हम वहाँ पहुँचे। (जोर दिया गया)

किसी भी उद्देश्य का अनुमान लगाए बिना और साक्ष्य को उसके मूल रूप में लेते हुए, इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि घटना स्थल पंचायत स्थल से 400-500 गज की दूरी पर था। इस साक्ष्य के आधार पर ही राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अपना तर्क दिया कि यह दूरी इतनी कम थी कि जिससे आरोपी का घटना स्थल पर होना असंभव हो। - हम इस तर्क से

सहमत हैं: 400-500 गज की दूरी को 'अन्यत्र उपस्थिति' नहीं कहा जा सकता - घटना स्थल और पंचायत बैठक दोनों में उपस्थित होना असंभव नहीं है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, दूरी इतनी ही है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य स्वयं इस दलील को नकारते हैं और इसलिए हम अपील में उठाए गए बहाने की दलील को स्वीकार करने के संबंध में अपनी सहमति दर्ज करने में असमर्थ हैं। हालाँकि, इस मुद्दे पर पर्दा डालने से पहले, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बचाव पक्ष के साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को हमेशा दूषित नहीं कहा जा सकता क्योंकि बचाव पक्ष द्वारा जिन साक्षियों की जाँच की जा रही है, उनके तथ्यात्मक तथ्य के आधार पर। बचाव पक्ष के साक्षी अभियोजन पक्ष के साक्षियों के समान सम्मान और व्यवहार के हकदार हैं। विश्वसनीयता और विश्वासपात्रता का मुद्दा भी बचाव पक्ष के साक्षियों के लिए अभियोजन पक्ष के समान ही माना जाना चाहिए - बचाव पक्ष के साक्षी की ओर से हुई चूक को अभियोजक पक्ष के साक्षियों से अलग नहीं माना जा सकता और न ही उसके साथ अलग व्यवहार किया जा सकता है।

श्री वेंकटारमानी द्वारा उठाए गए दूसरे बिंदु पर ध्यान देते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक के शरीर पर पाए गए घावों को ध्यान में रखते हुए, मृत्यु समीक्षा और शव-परीक्षण प्रतिवेदन में कुछ अंतर मौजूद है। सुविधा के लिए, इसे नीचे सारणीबद्ध किया गया है:

| | |
|--|---|
| मृत्यु समीक्षा - चोटें नोट की गईं | शव-परीक्षण प्रतिवेदन - चोटों का पता चला |
| <p>1. किसी धारदार हथियार से गर्दन पर कट लगा है। गर्दन शरीर से थोड़ी जुड़ी हुई है। गर्दन का बाकी हिस्सा कटा हुआ है।</p> <p>2. सिर के बाईं ओर किसी धारदार हथियार से कट लगा है।</p> | <p>बाह्य</p> <p>1. खोपड़ी पर बाईं ओर एक चीरा लगा हुआ घाव। बाएं कान से 4 इंच ऊपर, 8 इंच x 2 इंच x मस्तिष्क तक गहरा। खोपड़ी और मस्तिष्क के नीचे खून का थक्का जमा हुआ था। बाएं पार्श्विका का</p> |

| | |
|--|--|
| <p>3. बाएँ हाथ पर कोहनी के नीचे और अग्रबाहु पर किसी धारदार हथियार से कट लगा है।</p> <p>4. बाएँ पैर पर तीन जगहों पर भाले के घाव हैं।</p> <p>5. दाएँ पैर पर धारदार हथियार से तीन घाव हैं।</p> <p>6. दाहिनी आंख के नीचे गाल पर एक घाव है।</p> | <p>एक भाग, ललाट और पश्चकपाल अस्थि का एक हिस्सा कटा हुआ था। मस्तिष्क का पदार्थ क्षतिग्रस्त था।</p> <p>आंतरिक रूप से:</p> <p>2. गर्दन के सामने एक चीरा लगा हुआ घाव, जिसमें मांसपेशियां कटी हुई हैं; श्वासनली, बड़ी रक्त वाहिकाएं और दोनों तरफ की नसें और ग्रासनली कशेरुकाएं स्तंभ (IV ग्रीवा) और रीढ़ की हड्डी काई।</p> <p>(i) बाएँ हाथ के सामने एक चीरा लगा हुआ घाव, 3"x3"x मांसपेशी की गहराई तक</p> <p>(ii) बाएँ हाथ के पीछे एक चीरा लगा हुआ घाव, 4"x3"x हड्डी की गहराई तक। सभी मांसपेशियाँ और रेडियम व अल्ना दोनों काटे गए थे।</p> <p>(iii) बाएँ कंधे पर तीन भेदी घाव थे, प्रत्येक 1-1/2" x 1-1/2" (जो मांसपेशियों को हड्डी तक भेदते थे)।</p> <p>(iv) दाएँ कंधे पर तीन चीरे वाले घाव थे, प्रत्येक 2" x 1/2" x मांसपेशियों की गहराई के।</p> <p>(v) दाहिनी आँख के नीचे एक भेदी घाव था, प्रत्येक 1/2" x 1/2" x 1/2"।</p> |
|--|--|

उपरोक्त के आधार पर, अपील के समर्थन में यह तर्क दिया गया है कि जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन और शव-परीक्षण प्रतिवेदन के बीच अंतर के कारण, अभियोजन पक्ष का मामला गंभीर संदेह से ग्रस्त है, जो किसी भी स्थिति में आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में संदेह को जन्म देता है। इसी तर्क के समर्थन में श्री वेंकटरामानी ने इस न्यायालय के *बालक सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर (1975) एससी 1962* के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा जताया है, जिसमें इस न्यायालय ने टिप्पणी की थी:

"...इन परिस्थितियों में, इसलिए, उच्च न्यायालय का यह मानना पूरी तरह से उचित था कि मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन में उच्च न्यायालय द्वारा बरी किए गए चार आरोपियों के नामों का उल्लेख न होना एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिस्थिति थी जो चारों आरोपियों के पक्ष में गई। इस चूक के दो परिणाम हैं। पहला, यह उच्च न्यायालय द्वारा बरी किए गए चार आरोपियों की संलिप्तता पर संदेह पैदा करता है और दूसरा, यह स्वयं प्राथमिकी की सत्यता और प्रामाणिकता पर गंभीर संदेह पैदा करता है। यह समझ से परे है कि मृतक पर हमले में सक्रिय भूमिका निभाने वाले चार आरोपियों का उल्लेख मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन में और उस व्यक्ति के संक्षिप्त बयान में क्यों नहीं किया गया, जिसने चार घंटे पहले प्राथमिकी दर्ज कराई थी। राज्य के अधिवक्ता ने इस चूक को इस आधार पर उचित ठहराने की कोशिश की कि मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन प्रदर्श पी.एच. में सभी नौ आरोपियों के नाम दस्तावेज़ के शीर्ष पर उल्लिखित प्रतीत होते हैं। वहाँ हालांकि, अभियुक्तों के नाम लिखने के लिए कोई कॉलम नहीं है, इसलिए जांच अधिकारी को उस विशेष स्थान पर अभियुक्तों के नाम लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

अंत में, अनुसंधानकर्ता, अभियोजन साक्षी 23 तेजा सिंह ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया कि उन्होंने मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन तैयार की थी और उन्होंने इसे बंता सिंह और हरनाम सिंह (साक्षियों) को पढ़कर सुनाया था, लेकिन बाद में उन्होंने यह कहने की कोशिश की कि उन्होंने बंता सिंह और हरनाम सिंह को मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन पढ़कर नहीं सुनाई

थी, बल्कि प्रतिवेदन पर उनके अंगूठे के निशान लेने से पहले ऐसा किया था। यह परिस्थिति अभियोजन पक्ष के मामले के विरुद्ध स्पष्ट रूप से कुछ कहती है। इसलिए, यदि एक बार यह सिद्ध हो जाता है कि चारों आरोपियों के नाम अभियोजन पक्ष के कहने पर जानबूझकर जांच प्रतिवेदन में जोड़े गए थे, तो मृतक पर हमले में अपीलकर्ताओं की भागीदारी की सच्चाई की कोई गारंटी नहीं रह जाती।

आइए, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दोनों दस्तावेजों में मौजूद कमियों की जांच करें और स्वयं विचार करें कि क्या कोई ऐसा महत्वपूर्ण अंतर है जो अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता पर संदेह के कारण वाद को प्रभावित कर सकता है। मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन में मद संख्या 4 और 5 दो मूलभूत मद हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे शव-परीक्षण प्रतिवेदन में गायब हैं; इस प्रकार अभियोजन पक्ष के संदिग्ध प्रकृति के दावे को खारिज किया जा सकता है। हम इससे सहमत नहीं हैं। बाएं या दाएं पैर पर चोटें हो सकती हैं या नहीं भी हो सकती हैं, लेकिन तथ्य यह है कि शव-परीक्षण प्रतिवेदन में इसका कोई उल्लेख नहीं है - क्या इससे अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता प्रभावित होती है? शव-परीक्षण प्रतिवेदन मृतक इंद्रसन प्रसाद के शव का शव-परीक्षण करने वाले चिकित्सक द्वारा तैयार की गई है और उनके निष्कर्ष उसमें दर्ज किए गए हैं। यह दस्तावेज अपने आप में कोई ठोस सबूत नहीं है, बल्कि न्यायालय में चिकित्सक का दिया गया बयान ही ठोस सबूत की विश्वसनीयता रखता है, न कि प्रतिवेदन सामान्य परिस्थितियों में प्रतिवेदन का उपयोग केवल चिकित्सक साक्षी की याददाश्त ताज़ा करने या साक्षी के कटघरे से उसके द्वारा कही गई किसी भी बात का खंडन करने के लिए किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में मद्रास उच्च न्यायालय के *रामस्वामी* मामले, एआईआर (1938) मद्रास 336 के फैसले का *हवाला* दिया जा सकता है। इसी प्रकार, मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन को भी बुनियादी या ठोस सबूत नहीं माना जा सकता है, क्योंकि यह पुलिस कर्मियों द्वारा तैयार की गई है, जो चिकित्सा क्षेत्र से संबंधित नहीं हैं और कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में तैयार की गई है। उपरोक्त के मद्देनजर, किसी विशेष चोट का उल्लेख न होना या उसमें किसी अतिरिक्त चोट का संकेत न होना अभियोजन पक्ष के मामले को अमान्य नहीं कर सकता। मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन के साक्ष्य

मृत्यु को उस स्तर पर नहीं रखा जा सकता है जिस स्तर पर अपीलकर्ता ने रखा है। मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन तैयार करना आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अनुसार जांच का एक हिस्सा है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न तो मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन और न ही शव-परीक्षण प्रतिवेदन को बुनियादी साक्ष्य या ठोस साक्ष्य माना जा सकता है। इसमें पाई गई विसंगति को न तो घातक माना जा सकता है और न ही कोई संदिग्ध परिस्थिति, जिससे आरोपी को लाभ मिले और परिणामस्वरूप अभियोजन पक्ष का मामला खारिज हो जाए। तथ्यों के आधार पर, श्री वेंकटरामानी ने जगदीशपुर पुलिस शिविर प्रभारी साक्षी सं. 7 के साक्ष्य पर बहुत अधिक अवलंबन किया। अपने साक्ष्य में, अभियोजन साक्षी सं. 7 ने कहा कि मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन सनाह सं. 306 में निहित जानकारी के आधार पर तैयार की गई थी और चूंकि सनाह प्रस्तुत नहीं की गई है, इसलिए यह तर्क दिया गया है कि सनाह बुनियादी सूचना पत्र होने के कारण, इसे प्रस्तुत न करने से आरोपी व्यक्तियों की संलिप्तता के संबंध में प्रतिकूल अनुमान लगाया जा सकता है। स्पष्ट रूप से, इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि किसी को भी इस बात का कोई सुराग नहीं था कि घटना कैसे घटी। हमेशा की तरह वाक्पटु, श्री वेंकटरमणी ने, हमारे विचार से, इस मुद्दे पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर दिया है। किसी ठोस साक्ष्य को प्रस्तुत न करना कुछ परिस्थितियों में प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल सकता है, लेकिन वर्तमान संदर्भ में ऐसा नहीं है। कानूनी पेचीदगियों को न्याय के मार्ग पर हावी नहीं होने देना चाहिए, खासकर तब जब साक्ष्य प्रस्तुत न करने से अभियोजन पक्ष के मामले की जड़ तक कोई असर न पड़ता हो। स्पष्ट है कि ऐसी परिस्थितियाँ ऐसे परिणामों को जन्म दे सकती हैं, लेकिन वर्तमान संदर्भ में, इसे इतना आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

वास्तव में, अपील के समर्थन में मूल दलील मनगढ़ंत और विलंबित प्राथमिकी ही रही है। हालाँकि, अब यह बात पूरी तरह से स्थापित हो चुकी है और हमें इस पर बार-बार विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि केवल देरी को आपराधिक अभियोजन के लिए घातक नहीं कहा जा सकता। प्राथमिकी को ही प्रारंभिक बिंदु कहा जा सकता है और इस प्रकार यह आपराधिक जांच को गति प्रदान करती है। इस संदर्भ में, *अप्रेन जोसेफ उर्फ करंट कुंजुकुंजू एवं अन्य बनाम केरल राज्य*, एआईआर (1973) एससी 1 में इस न्यायालय की

टिप्पणी काफी उपयुक्त प्रतीत होती है। प्रतिवेदन के कंडिका 11 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित कहा है:

"11. अब प्रथम सूचना प्रतिवेदन, किसी अपराध के घटित होने से संबंधित एक प्रतिवेदन है जो पुलिस को दी जाती है और उसके द्वारा धारा 154, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज की जाती है। जैसा कि *प्रिवी काउंसिल ने एम्परर बनाम ख्वाजा*, आईएलआर 1945 एल.ए.एच. 1 = एआईआर (1945) पीसी 18 में देखा है, पुलिस द्वारा सूचना प्रतिवेदन की प्राप्ति और रिकॉर्डिंग किसी आपराधिक जांच को शुरू करने के लिए एक पूर्व शर्त नहीं है। न ही कानून यह प्रावधान करता है कि ऐसी सूचना प्रतिवेदन केवल एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा ही दी जा सकती है। धारा 154 के तहत प्रथम सूचना प्रतिवेदन को एक ठोस सबूत भी नहीं माना जाता है। इसका उपयोग केवल न्यायालय में सूचना देने वाले के साक्ष्य की पुष्टि या खंडन करने के लिए किया जा सकता है। लेकिन यह जानकारी दर्ज होने पर सूचना देने वाले द्वारा स्थापित मामले का आधार होती है। यह बहुत उपयोगी है यदि इसे अलंकृत करने का समय और अवसर मिलने से पहले या सूचना देने वाले की प्राथमिकी से पहले दर्ज किया जाए, इसलिए, यह अनिवार्य रूप से संदेह को जन्म देता है न्यायालय को देरी के संभावित कारण और स्पष्टीकरण को देखने के लिए सतर्क कर देता है और अभियोजन पक्ष के बयान की विश्वसनीयता पर इसके प्रभाव पर विचार करता है। हमारी राय में, किसी अपराध की सूचना पुलिस को देने के लिए कोई भी समयावधि सैद्धांतिक रूप से तय नहीं की जा सकती। उचित समय का प्रश्न प्रत्येक मामले में न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसलिए, पुलिस को पहली सूचना प्रतिवेदन दर्ज कराने में मात्र देरी, कानूनन, अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं होती। देरी के प्रभाव का आकलन, देरी के लिए दिए गए स्पष्टीकरण की विश्वसनीयता को ध्यान में रखते हुए, किसी भी वाद के सभी तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

अतः, यदि प्राथमिकी दर्ज करने में किसी तर्कसंगत कारण से देरी हुई हो, तो भी तथ्यात्मक रूप से देखा जाए तो इसका कोई महत्व नहीं है। इसलिए, आइए इस समय संक्षेप में तथ्यों पर नज़र डालें:

इस वाद की घटना 27 जून, 1980 को दोपहर लगभग 3 बजे नौटान पुलिस थाना से लगभग 20 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित जगदीशपुर गांव, नौका टोला के पास घटी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सूचक लक्ष्मण प्रसाद (अभियोजन साक्षी 5) घटना की कथित तिथि को अपने भाई इंद्रसन प्रसाद के साथ बेटिया गया था, जहाँ से वे बस से जगदीशपुर स्टैंड लौटे और बस से उतरने के बाद, दोनों ने बस स्टैंड के पास चाय पी और उसके बाद दोनों साइकिल से अपने गांव के लिए रवाना हुए। आगे बढ़ने पर उन्होंने नथुनी प्रसाद (अभियोजन साक्षी-3) और भगवत प्रसाद (अभियोजन साक्षी -4) को कुछ दूरी पर अपने पीछे आते देखा। जब सूचक और उसका भाई (मृतक) जगदीशपुर नौका टोला गांव से कुछ दूरी पर एक स्थान पर पहुंचे, तो अचानक आरोपी व्यक्ति, नागेंद्र महतो उर्फ नागा महतो, कमल महतो, रघु साह, शंकर राउत, मुंशी महतो, गंगा बिशुन मबटन और नथुनी राउत, पास की झाड़ियों और गन्ने के खेतों से निकले और उन्होंने सूचक और उसके भाई को घेर लिया। उनके हाथों में भाला, फरसा और डबिया जैसे हथियार थे। हालांकि, जैसा कि साक्ष्य में दर्ज है, सूचक ने खुद को छुड़ाया और भागने लगा तथा शोर मचाया। वह पुलिस थाना से कुछ दूरी पर खड़ा था और उसने देखा कि उपरोक्त सभी आरोपी व्यक्तियों ने उसके भाई, मृतक इंद्रसन प्रसाद को घेर रखा था, जो भागने की कोशिश कर रहा था। सूचक के अनुसार, गंगा बिशुन महतो और नथुनी राउत ने पीड़ित पर हमला किया। जब भाला उसकी पीठ पर था, तब रघु साह ने पीड़ित को उसकी कमर से पकड़कर जमीन पर गिरा दिया। इसके बाद मुंशी प्रसाद ने उसे मारने का आदेश दिया और नागा मबतोन ने हाथ में लिए दबिया से पीड़ित पर वार करना शुरू कर दिया। जब पीड़ित छूटने की कोशिश कर रहा था, तभी अन्य आरोपियों ने उसे पकड़ लिया और उसकी गर्दन काट दी। इसी बीच, दो अन्य साक्षी , नथुनी प्रसाद और भगवत प्रसाद भी पहुँच गए और उन्होंने अपराधियों को भागते हुए देखा। बाद में, कुछ अन्य लोग भी पहुँचे जिनमें लक्ष्मी महतो (अभियोजन साक्षी-2) और नायक महतो (अभियोजन साक्षी-1)

शामिल थे और उन्होंने भी अपराधियों को भागते हुए देखा। सूचक के अनुसार, आरोपियों की सूचक के परिवार से पहले से दुश्मनी थी और इसलिए उन्होंने सूचक के भाई को रोककर उसकी बेरहमी से हत्या कर दी। इस घटना के बाद सूचक (अभियोजन साक्षी -5) जगदीशपुर चौकी पर गया, जहाँ उसकी मुलाकात अवर उपनिरीक्षक अभय कुमार सिंह (अभियोजन साक्षी-7) से हुई और उसने फर्दबयान में अपना बयान दिया, जिसे शाम 4:30 बजे दर्ज किया गया। इसके बाद अवर उपनिरीक्षक चौकी पर आया और उसने मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन तैयार की और शव को शव-परीक्षण के लिए भेज दिया। शव-परीक्षण विभाग ने चौकी का निरीक्षण भी किया, और कुछ सामान जब्त किया तथा सूचक का आगे का बयान भी दर्ज किया। फर्दबयान को जगदीशपुर ओ.पी. से नौतान पुलिस थाना भेजा गया, जगदीशपुर ओ.पी. से, जहाँ मामला दर्ज किया गया। हालांकि, अनुसंधान अवर उपनिरीक्षक अभय कुमार सिंह (अभियोजन साक्षी -7) ने अपने हाथ में ली, जिसने प्रारंभिक जांच की और बाद में उसने नौतान पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी को प्रभार सौंप दिया, जिसने जांच पूरी करने के बाद मामले में आरोपपत्र दाखिल किया। शव को सिपाही सं. 214 भुवनेश्वर सिंह, दफादार और कुछ अन्य लोगों द्वारा एम.जी.के. अस्पताल ले जाया गया। वहां शव का शव-परीक्षण डॉ. अंशुमन शुक्ला (अभियोजन साक्षी -6) द्वारा 28 जून, 1980 को किया गया। इसके बाद, संज्ञान लेने के बाद, वादा सत्र न्यायालय को दौरा सुपुर्द किया गया। सत्र न्यायालय में वाद दर्ज किया गया और इसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वितीय, बेतिया को सौंपा गया, जहाँ आरोपियों के विरुद्ध 16 अगस्त, 1983 को आरोप तय किए गए और अभियोजन पक्ष की ओर से साक्ष्य दर्ज किए जाने के बाद, आरोपियों के बयान धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए और कुछ बचाव पक्ष के साक्षियों की भी जांच की गई और विचारण समाप्त हुआ।

दोनों अपीलों में कुल सात अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, पश्चिम चंपारण, बेतिया द्वारा आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। हालांकि, इस अपील के परिणामस्वरूप उसे खारिज कर दिया गया और इसलिए विशेष अनुमति प्रदान करने पर इस न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर ही श्री वेंकटरमानी ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि इस मामले में शुरू की गई कार्यवाही को अंधाधुंध हत्या का मामला ही माना जा सकता है, जिसका कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। उन्होंने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष की कहानी मनगढ़ंत है, आरोपी व्यक्तियों की संलिप्तता के संबंध में, और "अज्ञात हत्या" हत्या के मामले को मृतक के भाई, अभियोजन साक्षी 5 के परिवार और आरोपी व्यक्तियों के बीच शत्रुता और दुश्मनी भरे संबंधों के कारण आरोपी व्यक्तियों की संलिप्तता के मामले में बदल दिया गया है। इस फैसले में बाद में शत्रुता के पहलू पर विचार किया जाएगा, लेकिन फिलहाल अपील के समर्थन में दिए गए उन तर्कों पर ध्यान देना उचित होगा जो अंधाधुंध हत्या की घटना से संबंधित हैं। हालांकि, जिन परिस्थितियों पर अवलंबन किया गया है, वे इस प्रकार हैं: (i) साक्षी 1 से 5 संभावित रूप से हितबद्ध साक्षी हैं क्योंकि वे एक ही गांव के निवासी हैं और एक दूसरे से संबंधित हैं। अभियोजन साक्षी 3, 4 और 5 के साक्ष्यों की कड़ी आलोचना की गई है, जिन्होंने चश्मदीद साक्षी होने का दावा किया था और इसी तरह अभियोजन साक्षी 1 और 2 के साक्ष्यों की भी आलोचना की गई है, जिन्होंने लगभग 700 से 800 गज की दूरी से चिल्लाने की आवाज सुनने का दावा किया था। आइए अभियोजन पक्ष के साक्षियों के साक्ष्यों का विश्लेषण करें - अभिलेखों से पता चलता है कि अभियोजन साक्षी 1 और 2 स्वतंत्र साक्षी हैं; जिन्होंने कहा है कि जब वे जगदीशपुर बाजार की ओर बढ़ रहे थे और जब वे घटनास्थल के पास पहुँचे, तो उन्होंने अपीलकर्ताओं को हाथों में दबिया लेकर भागते देखा और आरोपियों को हथियारों के साथ भागते देखकर ही वे घटनास्थल पर पहुँचे और मृतक का शव वहाँ पड़ा देखा। श्री वेंकटरमणी ने इस साक्ष्य को अत्यन्त असंभाव्य बताते हुए तर्क दिया कि दोनों साक्षी अपने कंधों पर लगभग 15 किलोग्राम सब्जियों का बोझ लेकर चल रहे थे। किन्तु जो ग्रामीण व्यक्ति सब्जियाँ उगाकर उन्हें बाजार में बेचने जाता है, वह स्वाभाविक रूप से ऐसा बोझ अपने कंधों पर ही उठाकर ले जाएगा। लगभग 15 किलोग्राम का भार किसी *परिष्कृत नगरवासी* के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है, किन्तु किसी ग्रामीण कृषक अथवा व्यापारी के लिए ऐसा आवश्यक नहीं है। यद्यपि इन दोनों साक्षियों का व्यापक रूप से प्रतिपरीक्षण किया गया, तथापि उससे अपीलकर्ताओं को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ और उनका

साक्ष्य पूर्णतः अक्षुण्ण रहा। इसलिए वह न्यायालय द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य है। अभियोजन साक्षी-3, 4 एवं 5 के साक्ष्य की इस प्रकार दो स्वतंत्र साक्षियों द्वारा पुष्टि हो जाती है। अन्य तीन अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के संबंध में श्री वेंकटरमणी की मुख्य दलील यह है कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत घटनाक्रम का एकमात्र गुण उसके साक्ष्य में विद्यमान विरोधाभास ही है।

संयोगवश, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित किए बिना, मामूली मुद्दों पर मामूली विसंगतियों के आधार पर, न्यायालय को साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए। यदि साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य का सामान्य सार और विचारण न्यायालय साक्ष्य के मूल्यांकन के बाद उसकी विश्वसनीयता के बारे में राय बनाती है, तो सामान्य परिस्थितियों में अपीलीय न्यायालय द्वारा बिना किसी उचित कारण के उसकी पुनः समीक्षा करना उचित नहीं होगा। स्थिति की समग्रता पर ध्यान दिया जाना चाहिए, और हम अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के अवलोकन के आधार पर प्रतिवाद पारित करने का कोई औचित्य नहीं देखते हैं। इस संदर्भ में, इस न्यायालय के दो निर्णयों का संदर्भ दिया जा सकता है। इस संदर्भ में, इस न्यायालय के दो निर्णयों का उल्लेख किया जा सकता है। पहला, *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एम.के. एंथनी*, (198S] 1 एस.एस.सी. 505, और दूसरा, *लीला राम बनाम हरियाणा राज्य*, [1999] 9 एस.एस.सी. 525 का मामला। यह दर्ज करना अनावश्यक है कि कुछ मामूली विवरणों में अंतर हो सकता है, जो अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते, लेकिन केवल इसी आधार पर न्यायालय मामूली भिन्नताओं और विसंगतियों के आधार पर साक्ष्य को खारिज नहीं करेगा। लीला राम (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय ने प्रतिवेदन के कंडिका 9 में टिप्पणी की थी:

“24. जब किसी प्रत्यक्षदर्शी से विस्तार से पूछताछ की जाती है, तो यह पूरी तरह संभव है कि वह कुछ विसंगतियां प्रस्तुत करे। कोई भी सच्चा साक्षी कुछ विसंगत विवरण प्रस्तुत करने से बच नहीं सकता। संभवतः एक असत्य साक्षी जिसे अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया गया हो, वह अपने बयान को पूरी तरह से विसंगत बना

सकता है। लेकिन न्यायालयों को यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल तभी जब किसी साक्षी के साक्ष्य में विसंगतियां उसके बयान की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत हों, न्यायालय उसके साक्ष्य को खारिज करने के लिए उचित है। लेकिन किसी घटना के वर्णन में मामूली भिन्नताओं के आधार पर अत्यधिक गंभीर दृष्टिकोण अपनाना (चाहे वह दो साक्षियों के साक्ष्य के बीच हो या एक ही साक्षी के दो बयानों के बीच) न्यायिक जांच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।

इस न्यायालय ने आगे टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 656-57, कंडिका 25-27)

"25. विचारण न्यायालयों में किसी साक्षी के पिछले बयान से विरोधाभास निकालना एक आम प्रथा है ताकि उससे प्रति-परीक्षण के दौरान उसका सामना किया जा सके। केवल इसलिए कि साक्ष्य में असंगति है, साक्षी की विश्वसनीयता को कम करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 155, किसी असंगत पूर्व बयान के प्रमाण द्वारा साक्षी की विश्वसनीयता पर आक्षेप लगाने की गुंजाइश प्रदान करती है। लेकिन इस धारा को पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि सभी असंगत बयान गवाह की विश्वसनीयता पर आक्षेप लगाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। धारा का मुख्य भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

155. साक्षी की विश्वसनीयता पर सवाल उठाना - किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर विरोधी पक्ष द्वारा, या न्यायालय की सहमति से, उसे बुलाने वाले पक्ष द्वारा निम्नलिखित तरीकों से सवाल उठाया जा सकता है: (1) - (2)

(3) उसके साक्ष्य के किसी भी भाग के विपरीत पूर्व कथनों के प्रमाण द्वारा, जिसका खंडन किया जा सकता है;

26. कोई पूर्व कथन, भले ही साक्ष्य से असंगत प्रतीत होता हो, अनिवार्य रूप से खंडन के लिए पर्याप्त नहीं होता। केवल असंगत कथन का वह भाग जिसका खंडन किया जा सकता है, साक्षी की विश्वसनीयता को प्रभावित करेगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 भी प्रति-परीक्षणकर्ता को साक्षी के किसी भी पूर्व कथन का उपयोग करने में सक्षम बनाती है, लेकिन यह चेतावनी देती है कि यदि इसका उद्देश्य साक्षी

का खंडन करना है, तो प्रति-परीक्षणकर्ता को उसमें निर्धारित औपचारिकता का पालन करना अनिवार्य है। संहिता की धारा 162 भी प्रति-परीक्षणकर्ता को साक्षी के पूर्व कथन (संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज) का उपयोग केवल सीमित उद्देश्य के लिए, अर्थात् साक्षी का खंडन करने के लिए करने की अनुमति देती है।

27. अतः किसी साक्षी का खंडन करना, साक्षी के उस विशेष कथन को अविश्वासनीय साबित करना है। जब तक पूर्व कथन में वर्तमान कथन को अविश्वासनीय साबित करने की क्षमता न हो, तब तक, भले ही बाद वाला कथन पूर्व कथन से कुछ हद तक भिन्न हो, उस साक्षी का खंडन करना सहायक नहीं होगा (देखें *तहसीलदार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, एआईआर (1959) एससी 1012)।

इसलिए, मुद्दा यह है कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय और स्वीकार्य साक्ष्य है: प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर उत्तर सकारात्मक है और विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने भी इसे ऐसा ही माना है।

(ii) एक शिकायत में यह कहा गया कि संबंधित साक्षियों के अलावा आस-पास के आवासीय क्षेत्रों से किसी और की जाँच नहीं की गई है - यह सच है: साक्ष्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, मात्रा नहीं। मुख्य मुद्दा यह है कि क्या अभियोजन पक्ष उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर आरोपों को साबित कर पाया है - यदि उपलब्ध साक्ष्य संतोषजनक हैं और विश्वसनीय माने जा सकते हैं, तो साक्षियों की संख्या में वृद्धि को मामले के लिए आवश्यक नहीं कहा जा सकता। दो स्वतंत्र साक्षियों को भी संबंधित साक्षियों के समूह में शामिल किया गया है, जो न तो स्वीकार्य है और न ही स्वीकार्यता के योग्य है, और किसी भी स्थिति में उपलब्ध अभिलेखों से इसका कोई समर्थन नहीं मिलता है- यदि अभिलेख में मौजूद साक्ष्य अन्यथा संतोषजनक प्रकृति का है और विश्वसनीय माना जा सकता है, तो साक्षियों की संख्या में वृद्धि को मामले के लिए आवश्यक नहीं कहा जा सकता। दो स्वतंत्र साक्षियों को भी हितधारक साक्षियों के समूह में रखा गया है, जो न तो स्वीकार्य है और न ही स्वीकार्यता के योग्य है और किसी भी स्थिति में उपलब्ध अभिलेखों से इसका समर्थन नहीं मिलता है। इसके अलावा, साक्षी संख्या 1, 2 और 3 को छोड़कर, वे एक-दूसरे से संबंधित हो सकते हैं,

लेकिन इसका अर्थ साक्ष्य को पूरी तरह से अस्वीकार करना नहीं है: वे हितधारक हो सकते हैं, लेकिन यदि वे ऐसा हैं, तो न्यायालय का यह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह इन हितधारक साक्षियों के साक्ष्य की जांच में अधिक सावधानी बरते और यदि ऐसी जांच में यह पाया जाता है कि अभिलेख में मौजूद साक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय है, तो हितधारक साक्षी होने के आधार पर इसे अस्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, साक्ष्य की समग्रता ही मायने रखती है और यदि इससे साक्ष्य की स्वीकार्यता का विश्वास उत्पन्न होता है, तो 'हितधारक साक्षी' होने के कारण साक्ष्य को अस्वीकार करने का प्रश्न उचित नहीं होगा। उपरोक्त के आधार पर, अभियोजन पक्ष के साक्षियों के साक्ष्य को अस्वीकार करने की दूसरी दलील मान्य नहीं हो सकती।

(iii) तीसरे बिंदु पर अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया कि चूंकि अभिलेख में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह पता चले कि आरोपी व्यक्ति को उस दिन मृतक की गतिविधियों की जानकारी थी, इसलिए यह लगभग असंभव है कि किसी भी साक्षी ने वास्तव में उस घटना को देखा हो, जिसके कारण मृतक की मृत्यु हुई है, और परिणामस्वरूप आरोपी व्यक्तियों को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की प्रकृति के आधार पर और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, किसी भी प्रकार के संदेह का लाभ दिए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता; अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद है, जिससे न्यायालय के मन में विश्वास उत्पन्न होता है।

(iv) अगले बिंदु पर यह तर्क दिया गया है कि चूंकि वह बाजार का दिन था, इसलिए यह अत्यंत असंभव है कि आरोपी ने अभियोजन पक्ष के साक्षियों द्वारा बताए गए तरीके और स्थान पर अपराध करने का जोखिम उठाया होगा। हम पहले ही ऊपर देख चुके हैं कि अभियोजन पक्ष के साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की प्रकृति न्यायालय के मन में विश्वास पैदा करती है, जिसके कारण उनके कथनों की सत्यता को स्वीकार किया जाना चाहिए: इस प्रकार, चाहे वह दिन बाजार का दिन था या नहीं, इससे अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता जिसे विस्तार से बताने की आवश्यकता हो।

(v) अंत में, बचाव पक्ष के साक्षियों की उपलब्धता पर बहुत जोर दिया गया है और उन पर अवलंबन न करने की अपीलकर्ताओं द्वारा कड़ी आलोचना की गई है। इस पहलू पर पहले ही अलीबाई की दलील पर विचार करते समय चर्चा की जा चुकी है, इसलिए हमें इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि बचाव पक्ष के साक्षियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अभियोजन पक्ष के साक्षियों की विश्वसनीयता को कम नहीं कर सकते।

अपील के समर्थन में प्रस्तुत अन्य दलीलों पर ध्यान देते हुए, जिनमें झूठे आरोप से संबंधित दलीलें शामिल हैं, अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया कि पक्षों, विशेष रूप से अभियोजन साक्षी-5, के बीच वादों की एक श्रृंखला चली है और इस प्रकार आरोपी व्यक्तियों को मुकदमेबाजी की प्रक्रिया से भारी नुकसान उठाना पड़ा है। दुर्भाग्य से, जैसा कि अब इस न्यायालय के समक्ष कहा जा रहा है, इस संबंध में कोई सबूत नहीं है। इसके विपरीत, अभियोजन पक्ष ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ एक निश्चित मकसद और द्वेष का आरोप लगाया है और यह इस संबंध में उच्च न्यायालय की टिप्पणियों से स्पष्ट होगा। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के कंडिका 16 में निम्नलिखित कहा है:

"16. जहाँ तक घटना के उद्देश्य का सवाल है, कई दस्तावेज प्रस्तुत किए गए हैं और यह बताया गया है कि चूँकि दोनों पक्षों के बीच वादों की एक श्रृंखला थी और कुछ सूचक की ओर से दायर किए गए मामलों में, कुछ आरोपी और उनके रिश्तेदार भी दोषी ठहराए गए थे, इसलिए उन्हें सूचक के परिवार से द्वेष था। अतः यह स्पष्ट है कि इस मामले में अपीलकर्ताओं के पास सूचक के भाई की हत्या करने का पुख्ता मकसद था। हालाँकि, अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि यह विचित्र है कि जब सूचक स्वयं उन मामलों में सूचक था जिनमें अपीलकर्ता या तो दोषी ठहराए गए थे या उन पर मुकदमा चल रहा था और जब सूचक भी उनके द्वारा घेरा गया था, तो उन्होंने सूचक को क्यों बख्श दिया और उसके भाई की हत्या कर दी। इस संबंध में, राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया है कि सूचक (अभियोजन साक्षी-5) के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब आरोपी व्यक्ति उसके मृत भाई के साथ उसे घेरे हुए थे, तो वह भाग गया। आरोपियों का घेरा: साक्षी -5 ने स्पष्ट रूप से यह भी कहा है

कि जब वह कुछ दूर भागा तो वह रुका और पुलिस अधिकारी की ओर देखने लगा और उसने पाया कि उसका भाई आरोपी व्यक्तियों से घिरा हुआ था और उन पर हमला किया जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी सूझबूझ और स्वविवेक के कारण सूचक हमलावरों के चंगुल से खुद को छुड़ाने में सफल रहा। उसका भाई समय रहते बचाव नहीं कर सका, इसलिए वह घिर गया और उस पर हमला हुआ। यदि आरोपियों को सूचक और उसके परिवार से कोई रंजिश थी, तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जब सूचक भाग निकला, तो उन्होंने उसके भाई को उसकी हत्या करने के लिए चुना। इसलिए, इसमें कुछ भी असामान्य नहीं है।

उपरोक्त कारणों से, हम बचाव पक्ष द्वारा शत्रुता का आरोप लगाने के मामले में भी अपनी सहमति दर्ज करने में असमर्थ हैं। वास्तव में, इसका कोई साक्ष्यिक समर्थन नहीं है, इसलिए इस निर्णय में इस पर विस्तृत चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

अपील के समर्थन में, प्रथम सूचना प्रतिवेदन (प्राथमिकी) से संबंधित एक और दलील दी गई है। इस संबंध में अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया है कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी की न्यायालय में प्राथमिकी की विलंबित प्राप्ति को संदेह की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि संहिता की धारा 157 के तहत पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी के लिए प्राप्त सूचना की प्रतिवेदन तुरंत दंडाधिकारी को भेजना अनिवार्य है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अभिलेख में मौजूद किसी सकारात्मक और विश्वसनीय साक्ष्य को नकार दिया जाए। तकनीकी पहलू को न्याय के मार्ग पर हावी नहीं होने देना चाहिए - यदि न्यायालय अन्यथा आश्वस्त है और अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता के संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचा है, तो मात्र विलंब, जिसे अन्यथा उचित माना जा सकता है, अपने आप में अभियोजन पक्ष के मामले को ध्वस्त नहीं करेगा। *शिव राम और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, [1998] 1 एसएससी 149 में इस न्यायालय का निर्णय उपरोक्त अवलोकन का समर्थन करता है।

इस न्यायालय ने *कर्नाटक राज्य बनाम मेन पटेल और अन्य*, एआईआर (1996) एससी 3041 में प्राथमिकी भेजने में देरी के मुद्दे पर निम्नलिखित कहा:

"इस मामले को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। हमने पहले ही पाया है कि अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि प्राथमिकी लगभग 1.30 बजे तुरंत दर्ज की गई थी और इसके आधार पर शुरू की गई अनुसंधान पूरी तरह से विश्वसनीय और स्वीकार्य है। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में, प्राथमिकी भेजने में मात्र देरी - और दंडाधिकारी द्वारा इसकी प्राप्ति में देरी - अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध नहीं बनाती है, जैसा कि इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने पाला सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर (1972) एससी 2679 में बताया है। "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 में निहित प्रासंगिक प्रावधान, जिसमें प्रतिवेदन (प्राथमिकी) को तुरंत भेजने का प्रावधान है, वास्तव में दंडाधिकारी को संज्ञेय अपराध की जांच की जानकारी देने के लिए बनाया गया है, ताकि वह जांच को नियंत्रित कर सके और यदि आवश्यक हो तो धारा 159 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उचित निर्देश दे सके। इसलिए, यदि किसी मामले में यह पाया जाता है कि प्राथमिकी बिना किसी देरी के दर्ज की गई थी और उस प्राथमिकी पर जांच शुरू कर दी गई थी, तो संबंधित दंडाधिकारी द्वारा प्रतिवेदन की देरी से प्राप्ति चाहे कितनी भी अनुचित या आपत्तिजनक क्यों न हो, यह अपने आप में इस निष्कर्ष को उचित नहीं ठहरा सकता कि जांच दूषित थी और अभियोजन निराधार था।

हालांकि, इस स्तर पर, आइए हम इस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण पर विचार करें। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के कंडिका 13 में निम्नलिखित कहा है:

"13. इस संबंध में राज्य की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम साक्षी (अभियोजन साक्षी 7) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि इस मामले का सूचक शाम 4:30 बजे चौकी पर पहुंचा था और उसने बयान दिया था जिसे फर्दबयान (प्रदर्श 1) में दर्ज किया गया था। यह तथ्य थाने की डायरी में भी दर्ज किया गया था और इसके बाद जांच अधिकारी चौकी के लिए रवाना हुए और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने शाम 5:30 बजे मृत्यु समीक्षा प्रतिवेदन (प्रदर्श 5) तैयार की और उस पर साक्षियों के

हस्ताक्षर प्राप्त किए और फिर उन्होंने शव को शव-परीक्षण के लिए भेज दिया। "उन्होंने पुलिस थाना में कुछ सामान जब्त किया और शाम 5:15 बजे घटनास्थल पर जब्ती सूची (प्रदर्श 4) तैयार की। उन्होंने एक सिपाही के माध्यम से शव को शव-परीक्षण के लिए भेजा और एक अग्रसारण प्रतिवेदन (प्रदर्श 6) तैयार की। इसके अलावा, अभियोजन साक्षी 7 के अनुसार, उन्होंने 28 जून 1980 को जांच का प्रभार दूसरे पुलिस अधिकारी अभियोजन साक्षी 8 को सौंप दिया था। फिर जांच अपने हाथ में लेने के बाद अभियोजन साक्षी 8 अरुण कुमार सिंह ने भी पुलिस थाना का निरीक्षण किया और अभियोजन साक्षी 6 के बयान दर्ज किए। इसलिए, यह स्पष्ट है कि न केवल फर्दबयान तैयार किया गया था, बल्कि पुलिस थाना में स्टेशन डायरी में भी प्रविष्टियां की गई थीं। अभियोजन साक्षी 7 से प्रभार लेने के बाद, अभियोजन साक्षी 8 ने 28 जून 1980 को आगे की जांच भी शुरू की। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जांच तुरंत शुरू की गई और तेजी से आगे बढ़ी। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अभियोजन साक्षी सं. 8 पुलिस थाना का प्रभारी अधिकारी था और प्राथमिकी को न्यायालय में भेजना उसका कर्तव्य था, लेकिन जैसा कि उसने बताया, वह 28 तारीख को घटनास्थल पर गया था और दिनांक 29.6.80 तक वहीं रहा, इसलिए प्राथमिकी समय पर नहीं भेजी जा सकी। इस परिप्रेक्ष्य में, केवल इसलिए कि इस मामले में प्राथमिकी मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी की न्यायालय में देरी से प्राप्त हुई, यह नहीं कहा जा सकता कि इस मामले में प्राथमिकी असली नहीं है या इसमें कोई खामी है या अभियोजन पक्ष के मामले को संदेह की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वैधानिक दायित्व अत्यंत शीघ्रता की गारंटी देता है। और यदि विलंब अनुचित न हो और इसका कोई ऐसा स्पष्टीकरण उपलब्ध हो जो स्वीकार्य हो, तो अभियोजन के दोषपूर्ण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्राथमिकी से जांच शुरू होती है। और यदि कहीं कोई विलंब होता है, और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, स्वीकार्य स्पष्टीकरण उपलब्ध हो, तो विलंब को परीक्षण को अमान्य करने वाला नहीं कहा जा

सकता। उपरोक्त के आधार पर, हम अपीलों के समर्थन में प्रस्तुत दलीलों से अपनी सहमति दर्ज करने में असमर्थ हैं।

इसलिए अपीलों में कोई गुण-दोष नहीं है और अतः इन्हें खारिज किया जाता है।

ए.के.टी.

अपीलें खारिज।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।